# उत्तराध्ययनसूत्र में विनय का विवेचन

०आचार्यप्रवर श्री हीराचन्द्र जी म.सा.

उत्तराध्ययनसूत्र की महत्ता निर्विवाद है। इसके ३६ अध्ययनों में तत्त्वमीमांसा, आचारमीमांसा एवं ज्ञानमीमांसा का विवेचन प्राप्त है। यह श्रमण एवं श्रमणोपासक दोनों वर्गों में लोकप्रिय है। अर्धमागधी प्राकृत सूत्रों में उत्तराध्ययनसूत्र ही ऐसा है, जिससे संक्षेप में सरलतया आवश्यक बोध हो जाता है। रत्नवंश के अष्टम पट्टधर आचार्यप्रवर श्री हीराचन्द्र जी म.सा. उत्तराध्ययन सूत्र को आधार बनाकर कई बार प्रवचन फरमाते हैं। उत्तराध्ययन सूत्र के विनय अध्ययन को लेकर भी उन्होंने कई प्रवचन दिए हैं। उन्हीं प्रवचनों में से कुछ अंश यहाँ उनके प्रवचनों की पुस्तक 'हीरा प्रवचन-पीयूष भाग—१' से संकलित कर प्रकाशित किया जा रहा है। **—सम्पादक**

---

तीर्थंकर भगवान महावीर की अन्तिम अनमोल वाणी 'उत्तराध्ययनसूत्र' का चातुर्मासिक चतुर्दशी के दिन प्रारम्भ किया था, दो दिन की असज्झाय हो जाने से शास्त्र वाचना नहीं करके चातुर्मास में करणीय विशेष कर्त्तव्यों का बोध हो, इस दृष्टि से कल रात्रि-भोजन त्याग की बात सामने रखी गई, आज तीर्थंकर भगवान् महावीर प्रभु की उस अन्तिम वाणी पर विचार किया जा रहा है।

## 'उत्तर' शब्द के तीन अर्थ

सूत्र का नाम है— उत्तराध्ययन। इसके उत्तर और अध्ययन दो विभाग होते हैं। आचार्य भगवन्तों ने उत्तर शब्द के तीन अर्थ प्रमुखता से किए हैं। एक उत्तर 'पश्चात्' अर्थ में प्रयुक्त होता है। यथा— पूर्वपक्ष, उत्तरपक्ष। पूर्व कथन, उत्तर कथन। अर्थात् किसी सूत्र के बाद कहा जाने वाला सूत्र है उत्तराध्ययन। दूसरा अर्थ है— उत्तर यानी समाधान। प्रश्न और उसका उत्तर, जिसे आप शंका और समाधान के नाम से भी कह सकते हैं। भव-भ्रमण की समस्याओं का समाधान करने के साथ, आत्म-स्वभाव, आत्मचिन्तन, आत्मजागरण और आत्मा-परमात्मा के विषय में किन-किन समस्याओं का किन-किन साधनाओं से किस क्रम में समाधान करना, उत्तराध्ययन सूत्र इसका कथन करता है। 'उत्तर' शब्द का तीसरा अर्थ है— प्रधान, श्रेष्ठ, उत्तम। भगवान महावीर प्रभु की अन्तिम समय में सारभूत, उत्तम, श्रेष्ठ वाणी होने से इस सूत्र को उत्तराध्ययन सूत्र कहा जा रहा है। पश्चात् कहने के अर्थ में यह सूत्र दशवैकालिक के बाद पढ़ा जाता है। आचार्य शय्यंभव द्वारा मनक मुनि हेतु पूर्वों से सार निकालकर दशवैकालिक सूत्र की रचना की गई। उसके बाद इस सूत्र का वाचन, पठन या व्याख्यान किया जाता है। इसलिये नाम की तरह अर्थ का साम्य भी बैठता है।

टीकाकार स्वयं जिज्ञासा करते हैं उत्तराध्ययन सूत्र उत्तम सूत्र है, श्रेष्ठ और प्रधान सूत्र है। उत्तराध्ययन सूत्र को श्रेष्ठ, उत्तम, प्रधान व सारभूत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूत्र कहने के पीछे क्या यह तात्पर्य है कि जीवन भर तीर्थंकर महावीर प्रभु ने जिन अंग सूत्रों का कथन किया वे कम श्रेष्ठ थे? क्या दूसरे अंगसूत्रों में कोई कमी थी? अथवा वे सूत्र आत्म-परमात्म तत्त्व से जोड़ने में कुछ न्यूनता वाले थे? यदि नहीं, तो उत्तराध्ययन सूत्र को उत्तम, श्रेष्ठ और प्रधान किस हेतु से कहा जा रहा है? समाधान है— जीवन के अन्तिम समय में निचोड़ रूप कही गयी वाणी सारभूत कहलाती है।

प्रभु महावीर ने साधना के क्षेत्र में कदम बढ़ाकर घनघाती कर्मों को क्षय करने के बाद चार तीर्थों की स्थापना की और वाणी का वागरण किया। तीर्थंकर भगवान् महावीर की वाणी की 'त्रिपदी' से गणधर भगवन्तों ने अपने क्षयोपशम के अनुसार चौदह पूर्वों की रचना की और भगवन्त की वाणी के अर्थों को सूत्र रूप में गुंफित किया। आचारांग सूत्र पाँच आचारों का, महाव्रतों का, समितिगुप्ति का, कषायों से हटने का और वीतराग भाव की ओर बढ़ने का कथन करता है। सूयगडांग सूत्र स्व-सिद्धान्तों के मंडन और पर दर्शनों की मान्यताओं का अनेकान्त दृष्टि से प्रतिपादन करने की स्थिति से खण्डन-मण्डन करता है। ठाणांग सूत्र में, यह वस्तु है तो किस अपेक्षा से कौन से नय से है, इसका एक-दो-तीन इस तरह भेद-प्रभेद करते-करते दस ठाणों में वर्णन है। समवायांग सूत्र में द्रव्यानुयोग, जीव, कर्म, आस्रव, संवर, मोक्ष आदि विषयों का भेद-प्रभेद सहित विभिन्न समवायों में वर्णन है। समवायों के माध्यम से इसमें विशिष्ट ज्ञानसामग्री संकलित है।

भगवती सूत्र में अनेकानेक जिज्ञासाओं का समाधान है। छत्तीस हजार जिज्ञासाएँ और उनका समाधान भगवती सूत्र में है। ज्ञाताधर्मकथा 'ज्ञात' अर्थात् उदाहरण या दृष्टान्तों के माध्यम से और उपमाओं के माध्यम से अवगुण छोड़ने की बात रखता है। उपासकदशांग में दस श्रावकों का वर्णन है। अन्यान्य गणधरों ने इसी तरह दस-दस श्रावकों का अलग-अलग वर्णन किया है। अन्तगडदसा सूत्र में जीवन के अन्तिम समय में कर्मों का अन्त कर समाधि प्राप्त करने वाले, परिनिर्वाण और मोक्ष प्राप्त करने वाले नब्बे जीवों का वर्णन है। अणुत्तरोववाइ में अल्पकाल में अधिक निर्जरा कर अनुत्तर विमान में उत्पन्न होने वाले जीवों का वर्णन है। प्रश्नव्याकरण अनेक प्रकार की लब्धियों-सिद्धियों का वर्णन करने वाला सूत्र था। वर्तमान में उसमें ५ आस्रव एवं ५ संवर का वर्णन मिलता है। विपाकसूत्र सुख-दुःख का वर्णन करता है। साथ ही किस तरह दुःख देने से, असाता पहुँचाने से जीवन में कष्टानुभूति होती है और उसमें समभाव रखने से मोक्ष की प्राप्ति होती है, इसका वर्णन है। सुखविपाक में जन्म से सुख-समाधिपूर्वक पुण्य फल भोगते हुए मोक्ष जाने वालों का कथन है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

## उत्तराध्ययन की 'मूल' संज्ञा

अंगशास्त्र की सारगर्भित वाणी का कथन करने के बाद प्रभु महावीर ने मोक्ष जाने के पूर्व उत्तराध्ययन सूत्र के अन्तर्गत पचपन पाप–विपाक, पचपन पुण्यविपाकों का वर्णन करते हुए छत्तीसवें अध्ययन में मरुदेवी माता का उल्लेख करते हुए परिनिर्वाण प्राप्त किया है। उत्तराध्ययन सूत्र प्रभु महावीर की अन्तिम वाणी है, इसलिए इस सूत्र में सारभूत चार अनुयोगों का कथन है, मात्र धर्मकथानुयोग का ही नहीं। उत्तराध्ययन सूत्र की बारह सौ वर्षों तक मूल सूत्र में गणना नहीं की जाती थी। इसके पश्चात् इसे मूल सूत्र में गिना जाने लगा। उत्तराध्ययन, दशवैकालिक, नन्दी और अनुयोगद्वार– ये चार सूत्र ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप रूप मूलगुण–साधना का वर्णन करने वाले हैं। इस दृष्टि से आचार्यों ने इन्हें मूल रूप में मूलसूत्र की संज्ञा दी हो, ऐसा लगता है।

आचार्य भगवन्त (श्री हस्तीमल जी म.सा.) की भाषा में कहूँ तो उत्तराध्ययन सूत्र जैन धर्म की गीता है। वैदिक परम्परा में जो स्थान गीता का है, इस्लाम परम्परा में जो स्थान कुरान का है, ईसाई मत में जो स्थान बाइबल का है, बौद्ध परम्परा में जो स्थान धम्मपद का है, वही स्थान जैन धर्म में उत्तराध्ययन सूत्र का है। इस सूत्र में जीवन के आदिकाल से अन्तकाल तक, विनय से लेकर जीव-अजीव का भेदकर मोक्ष जाने तक का सरल सुबोध शैली में वर्णन उपलब्ध है। अतः इसे जैन धर्म की गीता के नाम से कहा जा रहा है। इसका एक-एक सूत्र जीवन में उतारने लायक है। उत्तराध्ययन सूत्र संजीवनी बूटी है। संजीवनी जैसे सम्पूर्ण रोगों का निकन्दन कर सकती है, ऐसे ही विकारों के शमन के लिए उत्तराध्ययन संजीवनी है।

भगवान की इस अनमोल वाणी उत्तराध्ययन सूत्र का आदि अध्ययन 'विनय' है। शास्त्र के मूल शब्द सामने रख रहा हूँ–

**संजोगा विप्पमुक्कस्स, अणगारस्स भिक्खुणो।**
**विणयं पाउकरिस्सामि, आणुपुव्विं सुणेह मे।।**

अर्थात् जो संयोग से मुक्त एवं अनगार है, उस भिक्षाजीवी साधु के विनय को प्रकट करूँगा।

तीर्थंकर भगवान महावीर द्वारा आगम की अर्थरूप में वागरणा की गई। उस वाणी को गणधरों ने सूत्र रूप में गुम्फित किया। सूत्र कहलाता ही वह है जिसमें सार भाग अधिक होता है। शब्द थोड़े, अर्थ अधिक।

## विनय का महत्त्व

भगवान महावीर मोक्ष के साधनरूप ज्ञान-दर्शन-चारित्र का प्रथम कथन करने की बजाय पहले विनय का कथन करने की बात कह रहे हैं। ऐसा क्यों? शास्त्र कहता है– विनय गुणों का आधार है। विनय ही ज्ञान, दर्शन, चारित्र की प्राप्ति का आधारभूत गुण कहा गया है। एक शब्द में कहें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तो गुणों को दूषित करने वाला दुर्गुण है अहंकार। अवगुणों में गुणों की सुगन्ध डालने वाला कलारूप साधन है 'विनय'। सम्पूर्ण श्रेष्ठताओं को विकारी भाव देने का दोष अहंकार में है। जैसे दूध में डाली गई काचरी, हलवे में पड़ा हुआ जहर वस्तु को विषाक्त बनाकर उन्हें अखाद्य-अपेय बना देता है, उसी तरह मोक्षमार्ग में चरण बढ़ाने वाले ज्ञान, दर्शन, चारित्र के गुणों को भी अहंकार विषाक्त बना देता है। इसीलिए नीतिकार कहते हैं– नगर में प्रवेश करने के जैसे दरवाजे होते हैं, नदी-तालाब में उतरने के लिए जैसे घाट बनाये जाते हैं, जंगल में प्रवेश हेतु जैसे पगडण्डी होती है उसी तरह ज्ञान, दर्शन, चारित्र की योग्यता-पात्रता लाने के लिए विनय दरवाजा है, घाट है, पगडण्डी है। इसलिए अर्थ किया जाता है– **'विशेषेण नयति प्रापयति ज्ञानादिगुणमसौ विनयः।'**

अर्थात् जो जीवन में ज्ञान, दर्शन, चारित्र के गुणों को विशेष रूप से खींचकर लाये, उसे विनय कहते हैं।

विनय का सामान्य, सरल, बोधात्मक अर्थ भी समाधान के रूप में कहा जा रहा है– **'विशिष्टो विविधो वा नयो नीतिर्वा विनयः।'** विविध प्रकार के या विशिष्ट नय अर्थात् नीति मार्ग को भी विनय कहते हैं। यह विनय किनका करना चाहिये? इस विनय के कौन अधिकारी हैं? इसके ज्ञान विनय,दर्शन विनय, चारित्र विनय और तप विनय के रूप में चार भेद किये जाते हैं। पाँच भेद रूप भी कथन किया जाता है। अनुवर्तन, प्रवर्तन, अनुशासन, सुश्रूषा और शिष्टाचार, ये विनय के पाँच भेद किये गये हैं।

एक विनयवाद है। तीर्थंकर प्रभु महावीर के समय में ३६३ वाद कहे जाते थे। उनमें एक वाद का नाम विनयवाद था। क्रियावाद, अक्रियावाद, अज्ञानवाद और विनयवाद– ये चार भेद अन्य मतों में किये गए हैं, जिनमें एक मत है 'विनयवाद'। उस मत में चाहे कोई ज्ञानी है, गुणी है, अवगुणी है, श्रेष्ठ है, हीन है, दीन है, निर्धन है, प्रत्येक प्राणी का विनय करना चाहिए। राजाधिराज को, महामंत्री को, शीलवान सज्जन पुरुषों को और श्रेष्ठिवर्यों को नमस्कार करने के साथ वहाँ कुत्ते-बिल्ली को भी नमस्कार किया गया है। उनके अनुसार जो भी आत्मा है, वह परमात्मा है। इस मत के अनुसार देवता, राजा, साधु, ज्ञाति, वृद्ध, अधम, माता तथा पिता को मन, वचन व काया से देशकालानुसार विनय किया जाता है। किन्तु यह विनय ज्ञानपूर्वक नहीं होता है।

## विनय के सात भेद

विनय को लेकर प्रभु महावीर ने सात भेद किये हैं-- ज्ञान विनय, दर्शन विनय, चारित्र विनय, मन विनय, वचन विनय, काया विनय और लोकोपचार विनय।

विनय किनका करना चाहिए, इस संबंध को लेकर उन्होंने तीन सूत्र

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रखे हैं– ज्ञानियों का, श्रद्धावानों का और चारित्र आत्माओं का विनय करो। इन तीनों का आदर, सम्मान और विनय करना आवश्यक बताया। विनय के तीन साधन हैं– मन, वचन और काया। उनके आधार पर मन विनय, वचन विनय एवं काया विनय नाम दिए गए। लोक-व्यवहार की दृष्टि से जो विनय किया जाता है वह लोकोपचार विनय है। यह शिष्टाचार अथवा दूसरों की इच्छा की पूर्ति के लिए भी किया जाता है।

संसार में प्रत्येक प्राणी विनय करते देखा जाता है, इसलिए विनय के भेद करते समय कहा गया– अर्थ विनय भी है, काम विनय भी है, भय विनय भी है। अर्थ की प्राप्ति हेतु एक पुत्र अपने पिता का, एक बहू अपनी सास का, एक नौकर अपने स्वामी का, एक सामान्य सा क्लर्क अपने अधिकारी का विनय करते देखा जाता है। यह विनय स्वार्थ से है। कामना के वशीभूत होकर भी व्यक्ति को विनय करते हुए देखा जाता है। गुण लेने हैं, कलाएँ सीखनी हैं, सामने वाले की सम्पदा को लेना है, ऐसी स्थिति में नम्रता एवं विनय करने वाला झुकता है,आदर सम्मान देता है। कभी भय से भी विनय किया जाता है। गलती हो गई, कुछ खो गया, नुकसान हो गया, ऐसी स्थिति में भय के मारे विनय करने वाले भी होते हैं। ये अर्थ, काम, भयादि विनय स्वार्थ के वशीभूत किए जाते हैं। यहाँ इस प्रकार के विनय का वर्णन नहीं किया जा रहा है। यहाँ जिस 'विनय' का वर्णन किया जा रहा है वह अहंकार को गलाने वाला है।

## विनय : समस्त गुणों का मूल

अहंकार, माया आदि से रहित विनय धर्म का मूल है। वह विनय आभ्यन्तर तप है। प्रभु महावीर कह रहे हैं– मैं संयोगमुक्त भिक्षाजीवी अणगार का विनय गुण प्रकट करूँगा। इसलिए करूँगा कि यह विनय जिसके जीवन में है, उसके गुण विकसित होते हैं, शोभित होते हैं। इसलिए अन्यत्र भी कहा गया है–

**नभोभूषा पूषा कमलवनभूषा मधुकरो,**
**वचोभूषा सत्यं वरविभवभूषा वितरणं।**
**मनोभूषा मैत्री मधुसमयभूषा मनसिजः,**
**सदो भूषा सूक्तिः सकलगुणभूषा च विनयः।।**

विनय सभी गुणों का भूषण है। जैसे आकाश का भूषण सूर्य है, कमलवन का भूषण भ्रमर है, वाणी का भूषण सत्य है, वैभव का भूषण दान है, मन का भूषण मित्रता है, सज्जन का भूषण उसका सुभाषित वचन है, इसी तरह सब गुणों का भूषण विनय है।

शास्त्र का कथन है– विनयी मधुरभाषी। विनयशील व्यक्ति कुछ नहीं देकर भी प्रेम और विश्वास अर्जित कर लेता है और विशिष्ट पदार्थों को देकर भी विनयहीन व्यक्ति प्रेम तोड़ देता है। राबड़ी खिलाकर भी 'फूल और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

फूल की पांखुड़ी ' के अलावा मुझ गरीब के पास क्या मिल सकता है, इस बात को कहकर विनयी प्रेम अर्जित कर लेता है और पाँच पकवान खिलाकर मन में अहंकार रखने वाला एक बात कह देता है कि— जीवन में कभी ऐसे पदार्थ कहीं सेवन किये हैं क्या? तो वह विद्वेष बांध लेता है। शास्त्रकार कह रहे हैं— व्यवहार जगत् में जो लोग स्वार्थ के वशीभूत होकर विनय करते हैं, मोक्ष मार्ग में उसका कथन नहीं किया जा रहा है। जिसके जीवन का यह अंतरंग गुण बना हुआ है, सहज बाहर और अन्तर का एक रूप रखकर जो प्रमोदभाव से सम्मान-सत्कार किया जा रहा है उस विनय का यहाँ वर्णन है और उसी विनय को धर्म का मूल कहा जा रहा है। दशवैकालिक सूत्र के नौवें अध्ययन में विनय को धर्म के मूल के रूप में कहा गया—

**मूलाओ खंधप्पभवो दुम्मस्स, खंधाओ पच्छा समुवेंति साहा।**
**साहप्पसाहा विरुहंति पत्ता, तओ सि पुप्फं च फलं रसो य।।**
**एवं धम्मस्स विणओ मूलं, परमो से मोक्खो।**
**जेण कित्तिं सुअं सिग्घं, णिस्सेसं चाभिगच्छइ।।दशवै.9.1.2।।**

अर्थात् जैसे वृक्ष के मूल में शाखा-प्रशाखा पुष्प फल उत्पन्न होते हैं उसी तरह धर्म का मूल विनय है। ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदि गुण शाखा-प्रशाखा-पुष्प के रूप में हैं और मोक्ष उसका फल कहा गया है। विनयायत्ताः गुणाः सर्वे...। जिनके जीवन में विनय है, वे सभी गुण प्राप्त कर सकते हैं। विनय अर्थात् काया से झुकना, वचन से मधुर बोलना और मन से सम्मान की भावना होना।

## चार भंग

भगवंत (आचार्य श्री हस्तीमल जी म.सा.) इसे चार भागों में बांटते थे। कहीं काया का विनय है, मन का नहीं। कहीं मन में विनय है, काया में नहीं। कहीं मन और काया दोनों में विनय है, तो कहीं मन और काया दोनों में विनय नहीं है। प्राचीन परम्परा में कभी घर का कोई बड़ा बुजुर्ग घर में प्रवेश कर जाता तो आज की तरह जैसे नई वधू खुले मुँह, बिखरे बाल सामने आकर बोल जाती है, पहले ऐसा नहीं था। बुजुर्गों के प्रवेश करने के साथ बहू दुबक कर बैठ जाती, अंग—प्रत्यंग का संकोच कर लेती। क्रिया से वह बहू चरण नहीं छूती थी, पर मन में सम्मान की भावना थी।

एक बच्चा जो पाठशाला में अध्ययन कर रहा है, शिक्षक के आने पर क्रिया से खड़ा होता है, नमस्कार करता है, शब्दों में सम्मान करता है, पर उसके मन में विनय नहीं है। 'यह मास्टर पीटता बहुत है' मन की भावना है कि इसकी बदली शीघ्र हो जाय और यह चला जाय, बदली न हो तो पीरियड तो खत्म हो। बच्चा काया से तो झुक रहा है, पर मन से नहीं।

विनय का सर्वोत्कृष्ट रूप है तन, वचन और मन तीनों से विनय का होना। विनय के इस रूप से सम्पन्न व्यक्ति सद्गुणी को देखकर हाथ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जोड़ेगा, नमस्कार करेगा, पधारो करके उच्चारण भी करेगा एवं मन से भी आदर देगा। कुछ ऐसे उदाहरण हैं जिनके न तन में विनय है, न मन में। पुत्र है, शिष्य है, पर विपरीत आचरण करने वाला है।

शास्त्र कह रहा है— गृहस्थ को विनय करना पड़ता है, व्यवहार की गाड़ी चलाने के लिए। एक गृहस्थ के यहाँ दूसरा गृहस्थ जन्म, शादी और मृत्यु जैसे प्रसंगों में इसलिए जाता है कि 'मैं जाऊँगा तो वह भी आएगा। मैं नहीं गया तो वह भी नहीं आएगा।' परन्तु आध्यात्मिक दृष्टि से जो स्वावलम्बी है, कार्य करने न करने की जिसे स्वतन्त्रता है, किसी के अनुशासन की जिसे आवश्यकता नहीं, ऐसे व्यक्ति विनय क्यों करें?

शास्त्र कह रहा है— यदि श्रुतज्ञान पाना चाहते हो, जीवन में सुख एवं शांति पाना चाहते हो तो विनय का आचरण करो।

विशेषता जीवन चलाने में नहीं, जीवन का निर्माण करने में है: अज्ञान रूप अंधकार को हटाकर नीति और धर्म के माध्यम से जीव का निर्माण कर आत्मोन्मुखी बनना हर व्यक्ति के वश की बात नहीं है। सूत्रों का पठन-पाठन और आगमिक-ज्ञान जीवन चलाने के लिए नहीं, अपितु जीवन निर्माण के लिए उपयोगी है।

## विनय से जीवन निर्माण

वाणी वह जो जीवन का निर्माण करे, जिसमें कोमलता, मधुरता, विनम्रता हो, जो ईर्ष्या-द्वेष की दीवारों को तोड़े और स्नेह-प्रेम की धारा प्रवाहित करे। वाणी एक दूसरे के ज्ञान में सहायक बन सकती है, मुक्ति से जोड़ सकती है। वाणी में, व्यवहार में विनय धर्म आवश्यक है, अन्यथा सड़े कान वाली कुतिया की भांति जहां भी जाएंगे, दुत्कारे जाएंगे-निकाल दिए जाएंगे।

उत्तराध्ययन सूत्र में प्रभु ने विनय धर्म को जीवन निर्माण का, आत्म विकास का सूत्र बताया है। विनय धर्म का संदेश उस दिव्यात्मा के समय में जितना उपयोगी था, आज के प्रति भौतिकवादी युग में उसकी उपयोगिता और भी अधिक है। आज विश्व भर में अनुशासनहीनता, अशांति, उच्छृंखलता, अनैतिकता और चारित्रिक कमियाँ बढ़ गई हैं। इन्हें दूर करना है तो महावीर की वाणी को, उनके सूत्रों को जीवन में उतारना होगा। अन्यथा वही होगा जो प्रभु ने उत्तराध्ययन सूत्र के पहले अध्याय की चौथी गाथा में फरमाया है—

**जहा सुणी पूईकण्णी, णिक्कसिज्जइ सव्वसो।**
**एवं दुस्सीलपडिणीए, मुहरी णिक्कसिज्जइ।।**

गाथा में सड़े कान वाली कुतिया से दुष्ट स्वभाव वाले, दुर्विनीत, दुराचारी व्यक्ति की तुलना करते हुए कहा गया है कि जैसे सड़े कानवाली कुतिया को, कान में पीप-रस्सी पड़ जाने या कीड़े पड़ जाने के कारण सभी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जगह से निकाल दिया जाता है, दुत्कार कर भगा दिया जाता है, ठीक वैसे ही जो व्यक्ति दुराचारी हैं, प्रत्यनीक (कृतघ्न) हैं, मुखरी (वाचाल) हैं— उन्हें भी सभी स्थानों से निकाल दिया जाता है।

## दुर्विनीत का पहला अवगुण : दुःशीलता

दुर्विनीत व्यक्ति के इस गाथा में तीन अवगुण या लक्षण बताए गए हैं। पहला अवगुण है उसका दुश्शील होना, दुराचारी होना, सदाचार-रहित होना। शील जीवन का शृंगार है,समाज में प्रतिष्ठा दिलाने वाला है, जीवन को ऊँचा उठाने वाला है। अविनीत व्यक्ति सदाचार और शील के महत्त्व को जानते बूझते हुए भी अवगुण-आराधक बन कर दुराचार व दुःशील में प्रवृत्त होना है।

दुराचारी व्यक्ति 'शील' को समझ कर भी विपरीत आचरण में खुश होता हुआ निरन्तर अधःपतन को प्राप्त होता है। अहिंसा,सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह आदि गुणों के महत्त्व को जान कर भी हिंसा आदि में अपने-आपको झौंक देता है। उसे बताया जाता है कि हिंसा अवगुण है, अहिंसा सद्गुण है। झूठ प्रतीति को घटाने वाला है, सत्य विश्वास को बढ़ाने वाला है। चोरी अस्थिरता देती है, पर अचौर्य स्थिरता प्रदान करता है। मैथुन जीवन-विनाश का क्षण है तो ब्रह्मचर्य जीवन-विकास का कारण। परिग्रह असंतोष व अशांति दाता है, जबकि अपरिग्रह से संतोष, शांति व सुख मिलता है। शीलवान् ही संसार में शोभा पाते हैं, दुश्शील व्यक्ति अपयश व निन्दा के भागी होते हैं। दुराचार समस्त पद-प्रतिष्ठा को धूल में मिलाने वाला होता है। हजारों-लाखों व्यक्ति इन हितोपदेशों को, जीवन निर्माणकारी सूत्रों को सुनते हैं, पर अज्ञानी जीव शीलरूप सदाचरण का त्याग कर कुशीलसेवन में निरत हो जाते हैं।

## दूसरा अवगुण : कृतघ्नता

दुर्विनीत का दूसरा लक्षण बताया है प्रत्यनीकता अर्थात् विरोधी आचरण रूप कृतघ्नता। दो तरह के व्यक्ति होते हैं एक कृतज्ञ और दूसरे कृतघ्न। कृतज्ञ का अर्थ है कृत अर्थात् किए गए को 'ज्ञ' अर्थात् जानने-मानने वाला। कृतघ्न इसके ठीक विपरीत होता है, अर्थात् वह अपने प्रति किए गए उपकारादि को भुला देता है, उसकी स्मृति तक को मिटा देता है, याद दिलाओ तो विपरीत भाषण, आचरण करता है।

दूसरों के किए गए उपकार पर पानी फिरा देने वाले कृतघ्न व्यक्ति कहीं टिकते नहीं। कोई उनको आदर नहीं देता। सभी उनसे दूर रहना, उनको दूर रखना पसन्द करते हैं। वे घर से निकाल दिए जाते हैं और जन-जन से तिरस्कृत होते हैं। आज के युग में कृतज्ञ कम हैं और कृतघ्न व्यक्तियों की भरमार है। परिवार से ही चलिए। परिवार में माँ का दर्जा सर्वश्रेष्ठ माना जाता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है, पर उसी माँ से संबंध तोड़ने में पुत्र को तनिक भी हिचकिचाहट नहीं होती।

आप श्रावकों में ही नहीं, यहाँ हम श्रमणों की श्रेणी में भी इस तरह के कृतघ्न हो सकते हैं। सं. २०२० में अजमेर में साधु-सम्मेलन का आयोजन हुआ। अनेकानेक श्रमण संघ पदाधिकारी पधारे, अन्य विद्वान-ज्ञानी श्रमण भी पधारे। आचार्य भगवंत के साथ मैं भी वहाँ था। एक बार एक संत से वार्ता का अवसर आया। उन महानुभाव ने अपने गुरु भगवंत का साथ छोड़ दिया था। मैंने उनसे पूछा– "तुमने अपने गुरुजी का साथ क्यों छोड़ दिया? जब तुम दीक्षा लेने आए तब श्रमण-धर्म का, आगम-ज्ञान 'अ' 'ब' भी नहीं जानते थे, तुम्हारे गुरुदेव ने न जाने कितनी मेहनत कर तुमको सिखाया, पढ़ाया और तैयार किया। तुम्हें योग्य बनाने के लिए उन्होंने अपनी साधना, अपना स्वाध्याय, अपना ज्ञान-ध्यान छोड़कर समय निकाला, ऐसे उपकारी गुरु से तुम अलग कैसे हो गए?"

जानते हैं आप, क्या जवाब दिया उस श्रमण ने? उसने कहा–"म्हारा गुरुजी यूं तो सगला काम म्हारे वास्ते करिया पण म्हारा सूं बखाण नी दिरावता, इण वास्ते आगो लेगो। आवे जिणां सूं एहीज बोले, म्हनें तो बोलणादे कोनी, जरे पछे कांई फायदो?" ऐसे अन्य बीसियों दृष्टान्त हमें अपने आस-पास के समाज में मिलेंगे।

## तीसरा अवगुण : मुखरी वचन

दुर्विनीत का तीसरा लक्षण बताया है– मुखरी अर्थात् वाचाल। "मुखरी" शब्द के तीन अर्थ लिए जाते हैं। एक बिना मतलब बोलने वाला, दूसरा जिसका मुख शत्रु है अर्थात् जिन्हें ढंग से बोलना नहीं आता। मारवाड़ी में कहें तो "बाई केवता रांड आवे।" तीसरा– जिन्हें सीधी बात कहने की आदत नहीं, जो हर बात में आड़ा–टेढ़ा ही बोलते हैं। बिना मतलब बोलने वाले कभी चुप नहीं बैठते। जैसे रेडियो का बटन ऑन करने पर रेडियो बोलने लगता है वैसे ही इन लोगों से कुछ पूछ लो, थोड़ा छेड़ लो फिर ये बोलते ही चले जाते हैं। स्थिति ऐसी आती है कि सुनने वालों को इन्हें हाथ जोड़कर वहाँ से उठना पड़ता है। लोग उन्हें देखकर अपना रास्ता तक बदल देते हैं, उनसे बचने के लिए।

मुखरी (मुख+ अरी) प्रकृति की एक तपस्वी बाई ने तपाराधन किया। आप उसकी साता पूछने चले गए। अपनी प्रकृति के अनुसार वह कहेगी– 'अब आया हो म्हारी साता पूछण ने, तपस्या पूरी हूगी अबे तो काले म्हारे पारणो है।' पूछने आए थे साता, पाँच बात सुननी पड़ी।

किसी ने भण्डारी सा से पूछा– "कीकर भण्डारी सा, बैठा हो!"

फटाक से जवाब मिल जाएगा– "सुहावे कोनी तो गुड़ाय दे भाई।"

और यदि बिना उनको बतलाए आगे निकल गए तो भी सुनना तो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पड़ेगा ही काल रा जाया—जर्नमिया, थोड़ी पढाई कई कर लीवी, ऐड़ी अकड़ाई। देखो तो राम-राम करणां सू ही गया।'' ऐसे व्यक्ति हर बात में लड़ने को तत्पर रहते हैं। ऐसे अनेक अविनीत-दुर्विनीत कदम-कदम पर यहाँ मिल जाएंगे।

बन्धुओं! दुर्गुणों को छोड़ो। ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदि आत्मगुणों के साधन विनय से प्रीति करो। विनय तप है, विनय धर्म है, विनय ही जीवन निर्माण की कला है। विनयवान बनो, धर्म की आराधना करो, तप की साधना करो तभी सुख, शांति व आनन्द की प्राप्ति हो सकेगी।

## विनय सर्वत्र आवश्यक

विनय का व्यवहार श्रमण और श्रावक सभी के लिए आवश्यक है। घर, परिवार, मुहल्ले, समाज सर्वत्र ही विनय जरूरी है। कई व्यक्ति आते हैं जो अनुभव सुनाते हैं कि जिनको आप लोगों ने अध्यक्ष बनाया है, मंत्री बनाया है— वे जब कार्यकारिणी आदि की बैठकें बुलाते हैं तो जो कुछ और जैसा कुछ वहाँ होता है, सुनकर अचम्भित रह जाते हैं। सोचता हूँ यह ओसवालों की, जैन समाज की मीटिंग है या और कुछ।

## संस्कार निर्माण और विनय

विनय जितना भूतकाल में आवश्यक था, उससे भी अधिक उसकी वर्तमान में आवश्यकता है। पहले तो पूर्वजों से, बड़े—बूढ़ों से घर में, गुरुजनों से शाला में संस्कार मिल जाते थे पर आज....?

आज समाज शनैः शनैः संस्कारहीन बनता जा रहा है। शिशु थोड़ा सा बड़ा हुआ और ढाई तीन वर्ष की उम्र में ही उसे स्कूल भेज दिया जाता है। बहनें खुश कि चलो झंझट मिटी, तीन-चार घण्टे तो आराम से बीतेंगे। आप लोग भी खुश कि बच्चा स्कूल जा रहा है, पढ़ रहा है, सीख रहा है। जिस उम्र में बच्चे को मां की गोद में स्नेह-ममता प्राप्त होनी चाहिए, पिता की छत्र-छाया, प्यार-दुलार संस्कार मिलना चाहिए, आज उस बच्चे को स्कूल भेजकर भारी-बोझ से दबा दिया जाता है। भारभूत बना वह ऐसी शिक्षा प्राप्त कर रहा है, जो उसके जीवन में शायद ही काम आए। संस्कार निर्माण का तो वहाँ प्रश्न ही कहाँ है? अब सोचिए बच्चों में संस्कार कहा से आएंगे, कहाँ से सीखेगा जीवन-निर्माण की कला वह बच्चा? क्या यही बच्चे की समुचित व्यवस्था है?

## विनय-शिष्टाचार

उत्तराध्ययन सूत्र में शिष्टाचार रूप विनय का वर्णन करते हुए प्रभु महावीर ने बताया है कि विनयशील साधक को अपने गुरु के समक्ष कैसे बैठना चाहिए? सूत्र का कथन जितना श्रमण जीवन के लिए उपयोगी है, उतना ही आप श्रावकों के जीवन के लिए भी हितकर है। कहा है –

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

**न पक्खओ न पुरओ नेव किच्चाण पिट्ठओ।**
**न जुंजे उरुणा उरुं, सयणे नो पडिस्सुणे।। उत्तरा. 1.18।।**
गुरुजन के आगे-पीछे, ना बाजू में अड़कर बैठें।
ना शय्या पर से उत्तर दें, ना जांघ सटा कर ही बैठें।।

अर्थात् शिष्य को चाहिए कि वह गुरु से कन्धा भिड़ाकर नहीं बैठे, उनके आगे नहीं बैठे, उनके पीछे अविनीतता से नहीं बैठे। इतना निकट भी नहीं बैठे कि उसके घुटने से गुरु का घुटना स्पर्श हो जाय। शय्या पर लेटे हुए उत्तर नहीं दे।

यह गुरु शिष्य की बात है। शिष्य गुरु से ज्ञान सीखता है। ज्ञान मिलता है विनयवान शिष्य को। अनेक बातें हैं विनय की। ज्ञान प्राप्त करते समय गुरु के सामने सीने पर हाथ बांध कर नहीं बैठे, पैर पर पैर रखकर नहीं बैठे। यह अभिमानसूचक मुद्रा है, अंग से अंग स्पर्श करके नहीं बैठे– यह अविनय है। मुनि ब्रह्मचारी है, उसने तीन करण, तीन योग से ब्रह्मचर्यव्रत धारण कर रखा है। ब्रह्मचारियों को अपने अंग का कोई हिस्सा दूसरे के अंग से भिड़ा कर वैसे भी नहीं बैठना चाहिए।

विनय के साथ बैठना शिष्टाचार है। बैठना ऐसा भी होता है, जिससे विकार वृद्धि हो। बैठने का एक ढंग ऐसा भी हो सकता है जिससे राग बढ़े। बैठने का ढंग कभी-कभी शरीर की चंचलता को बढ़ाने वाला भी हो सकता है। बैठने का ढंग व्रत-नियम, चारित्र से गिराने वाला भी बन सकता है। भगवान भी कहते हैं–

**णेव पल्हत्थियं कुज्जा, पक्खपिंड च संजए।**
**पाए पसारिए वावि, ण चिट्ठे गुरूणंतिए।। उत्तरा. 1.19।।**
बैठे नहीं बांधकर पलथी, पक्षपिण्ड से भी न कहीं।
गुरुजन के सम्मुख अविनय से, मुनि पाद-प्रसारण करे नहीं।।

जहाँ गुरुजन या बड़े लोग विराजमान हों तो उनके सम्मुख पांव पर पांव चढ़ाकर नहीं बैठें, घुटने छाती के लगाकर नहीं बैठें, पांव पसार कर नहीं बैठें।

## प्रश्न कैसे करें गुरु से ?

गुरुजनों से या अपनों से बड़े हों उनसे कभी कुछ प्रश्न पूछने का प्रसंग उपस्थित हो तो अपने आसन पर बैठे-बैठे ही प्रश्न नहीं करें। शिक्षा और उपदेश का उद्देश्य होता है, संस्कार धारण करना। जिज्ञासु शिष्य को प्रश्न करना है तो गुरु के समीप जाकर खड़े होकर विनयपूर्वक प्रश्न करे।

जीवन में जितना विनय होगा, ज्ञान देने वाला गुरु का मन उतना ही ज्ञान-दान के लिए उमड़ेगा। गलियार घोड़े और जातिवान् अश्व में अन्तर होता है। वही स्थिति ज्ञानार्जन करने वाले ज्ञानेच्छुओं की है। प्रवचन के समय कोई आगे आकर तो बैठ जाएगा, पर गर्दन झुकाकर नींद लेने लगेगा। यदि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऐसा हो तो ज्ञान वाले, सुनाने वाले, उद्बोधन देने वाले के दिल पर क्या बीतेगी? उसका उत्साह मुरझा जायेगा। उसका मन तो तभी उत्साहित होगा जबकि आपको सुनने की सजग जिज्ञासा हो।

शास्त्रकार कहते हैं–"जो विनय बाहर में है, उसे आचरण में लाने की भावना होनी चाहिए।" यहाँ कई लोग ऐसे भी हैं जो हम संतों की परीक्षा लेने की भावना से आते हैं। महाराज हमारे शहर में पधारे हैं, चलो देखा जाए कि वे कैसा प्रवचन करते हैं, क्या कहते हैं, किस ढंग से समझाते हैं? यह धर्मस्थान है, कोई परीक्षा का स्थान नहीं है। यहाँ सैंकड़ों अच्छी बातें सुनने, समझने को मिलेंगी। आप को जो भी अच्छी लगें, जीवन में ग्रहण कर लीजिए यह विनय है, यही शिष्टाचार है।

## अनुशासन रूप विनय

अनुशासन ही विनय है। गुरुदेव ने पुकारा– भाई कहाँ हो? शिष्य ने, आपके जोधपुर की भाषा में जैसा कहते हैं, कहा– आयोसा। गुरु पुकारते रहे और शिष्य– "आयोसा, आयोसा" कहता रहा। सुनना और सुने का अनसुना करना, यह आज्ञा का उल्लंघन है, अनुशासनहीनता है, अविनय है। समय का उल्लंघन करने वाला, समय को टालकर काम करने वाला भी शास्त्रों की दृष्टि में विनय नहीं कहलाता। गुरुवर को प्यास अभी लगी है और शिष्य जी कहें कि दस गाथा पूरी करके आऊं। दवा की जरूरत अभी है और वह बाद में दी जाए तो....! धर्म की आराधना की जरूरत आज है और आज नहीं कर पाए तो कल किसने देखा है? एक पल की भी किसे खबर है? पता नहीं आने वाले क्षण में स्थिति क्या होगी?

## कृतघ्नता त्यागें

अनुशासनहीनता का एक रूप है-- कृतघ्नता । नीतिकार कहते हैं "बुराइयों का मूल कारण मनुष्य की कृतघ्नता है।"

शास्त्र कह रहा है– मानव! विनय धर्म का मूल है। यदि तेरे जीवन में शिष्टाचार, अनुशासन, कृतज्ञता आदि विनय रूप गुण नहीं आए तो कितना ही पद-सम्मान प्राप्त कर ले, तेरी गति सुधरने वाली नहीं है। आपने पचासों दृष्टांत देखे-सुने-भोगे हैं और घर-गृहस्थी छोड़ने के बाद हम भी सुनते हैं। एक मामूली सी बात को लेकर सन्तान माता-पिता से बोलना बंद कर देती है। उन्हें दुःख पहुँचाने की बातें भी कानों में आती हैं। लड़कों के पास लाखों की माया है, पर माता-पिता के नसीब में दो समय का पूरा खाना भी नहीं है।

**सुणिया भावं साणस्स, सूयरस्स नरस्स य।**
**विणए ठविज्ज अप्पाणं, इच्छंतो हियमप्पणो।। उत्तरा.1.6।।**
कुत्ती सूअर नर-दुर्गति सुन, विज्ञ विचारो निज मन में।
अपने हित की इच्छा हो तो, शुभ धरो विनय इस जीवन में।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

''सड़े कान वाली कुतिया तथा चावल को छोड़कर भिष्टा खाने वाले शूकर की तरह अविनीत व्यक्ति सर्वत्र दुत्कारा जाता है, तिरस्कृत होता है. ऐसा दुष्परिणाम जानकर अपनी आत्मा का हित चाहने वाला अपने आप को विनय में स्थित करे।'' इसके विपरीत कुछ लोग हस्ती स्नान की तरह पहले जल में नहाकर शरीर स्वच्छ करते हैं और उसके बाद अपने पर रेत डाल लेते हैं अर्थात् पहले तो धर्माचरण कर आत्मशुद्धि की ओर बढ़ते हैं पर बाद में....! ऐसे सैकड़ों दृष्टान्त हो सकते हैं।

## विनय से सुख, शांति और आनन्द

आप जप कर लें, तप कर लें, व्रत कर लें, पर यदि आप में कृतज्ञता नहीं, विनय नहीं तो सारे जप-तप व्यर्थ हैं। भगवन्त (पूज्य गुरुदेव स्व. आचार्य श्री हस्तीमल जी म.सा.) फरमाते थे कि बारह महीने तक लड़का हिन्दी, अंग्रेजी, उर्दू सीखता है पर परीक्षा में अनुत्तीर्ण हो जाता है....! कारण यही है कि वह गुरु, माता-पिता का अहसान नहीं मानता। आप अपने माता-पिता और सम्माननीय गुरुजनों को, सज्जनों को पीड़ा देते हैं तो आपका तप-त्याग, शिक्षा-दीक्षा कोई काम की नहीं। आप जप-तप करने के साथ विनयी बनिये, कृतज्ञ बनिये, उपकारी के उपकार को ब्याज सहित चुकाना सीखिए। इससे आपको शान्ति मिलेगी, आप आगे बढ़ सकेंगे और आपका जीवनदर्शन भावी पीढ़ी को रोशन कर सकेगा। आप विनय धर्म को स्वीकार कर चलेंगे तो जीवन में सुख, शांति व आनन्द प्राप्त कर सकेंगे।

भगवान ने दुःखों के निवारण, समस्याओं के समाधान और सुख-प्राप्ति का मन्त्र देते हुए कहा है—

**अप्पा चेव दमेयव्वो, अप्पा हु खलु दुद्दमो।**
**अप्पा दंतो सुही होइ, अस्सिं लोए परत्थ य।। उत्तरा. 1.15।।**
आत्मा को वश में है करना, कारण आत्मा ही दुर्दम है।
इस भव परभव में सुख पाता, जो दान्त आत्मा सक्षम है।।

सुख प्राप्ति एवं दुःखों के नाश के लिए अपना दमन करो, स्व को वश में करो, अपनी आत्मा को नियन्त्रित एवं अनुशासित करो। अपनी आत्मा का, अपने अहं का दमन करना ही दुष्कर है। जो प्राणी जितेन्द्रिय बन दान्त बन जाता है, वह दान्त आत्मा ही इस लोक व परलोक में सुखी बनता है।

## दुःखों का कारण 'अहंभाव'

दुःखों का एकमात्र कारण है अपने आप पर नियन्त्रण नहीं रखना। जिसने अपनी आत्म-शक्ति पर, स्व-सामर्थ्य पर, अन्तर्निहित कोष पर नियन्त्रण नहीं रखा, वह स्वयं तो दुःखी बनता ही है, साथ ही उसने अपने परिवार, समाज और विश्व तक को भी दुःखी किया है। विश्व की जितनी भी समस्याएँ आपके समक्ष हैं, उन सबका मूल कारण है— प्राणी का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'अहंभाव'। अपने नाम, यश, कीर्ति के लिए प्राणी अपना भान खो देता है और 'अहं' में भर कर स्वयं समस्या बन जाता है।

अगर व्यक्ति अपने आपको इस समाज का,इस राष्ट्र का और समस्त जनता का एक पुर्जा मानकर, एक अंग समझकर चले तो कोई समस्या ही नहीं रहेगी। ऐसे व्यक्ति का हर कदम, हर कार्य, प्रत्येक वचन नपा-तुला, आत्म-चिन्तन से जुड़ा तथा परहित चिन्तन से युक्त होगा। मुझे कितना चलना है, कैसी हरकत करनी है, कितनी गति और प्रगति करनी है— इन सब बातों का सोच अर्थात् अपना स्वयं का आकलन समाज के सामने रखकर करना ही समस्याओं का सही निदान है। जब प्राणी का चिन्तन इस दिशा में बढ़ेगा और जीवन-शैली इसी विचार में चलेगी तो समाज में प्रदर्शन की भावना समाप्त हो जाएगी। न बाह्य आडम्बर रहेंगे और न परेशानियाँ पैदा होंगी।

आपके भीतर में जो भी बुराइयाँ हैं, अहंकार का भाव है, माया-लोभ, क्रोध-मान है उसे आप खुद ही दूर करें, इससे बढ़कर और कोई अच्छा रास्ता नहीं है। जो विनय करेगा, अनुशासन में रहेगा वह सुख, शांति और आनन्द का भागी होगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org